Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 15, Issue No. 7, September-2018, ISSN 2230-7540

भारत में न्यायपालिका की भूमिका

Renu Bala*

सारांश – *किसी प्रजातंत्र में, वृहत्तर सामाजिक पर्यावरण में कानून-व्यवस्था एवं न्यायपालिका महत्त्वपूर्ण घटक हैं। भारत में आधुनिक न्यायपालिका अपने संविधान से व्युत्पन्न करती है, और विधायिका एवं कार्यपालिका के यादृच्छिक निर्णयों पर एक नियंत्रण के रूप में काम करती है। संविधान सभा ने अधिकारों एवं न्याय के संरक्षक के रूप में न्यायपालिका के महत्त्व को पहले ही जान लिया था। जबकि सर्वोच्च न्यायालय भारत में कानून का सबसे बड़ा न्यायालय है, जिसके निर्णय सभी पर समान रूप से बाध्यकारी होते हैं, उच्च न्यायालय एवं अधीनस्थ न्यायालय क्रमशः राज्य एवं ज़िला स्तरों पर न्याय सुनिश्चित करते हैं। न्यायिक पुनरीक्षा एवं जनहित याचिका हेतु प्रावधान यह सुनिश्चित करते हैं कि कानून का शासन बरकरार रहे, जिससे सभी के लिए एक गौरवमय जीवन एवं न्यायाकूल संबंध प्रस्तुत हों। इस प्रकार, यह इकाई मौटे तौर पर एक विस्तृत*

----------x----------

परिचय

भारतीय शासन प्रणाली का तीसरा आधार स्तम्भ न्यायपालिका है। भारत की शासन प्रणाली संघात्मक है अर्थात् यहां शक्तियो या कार्यों का विभाजन केन्द्र सरकार (भारत) तथा राज्य सरकारों के मध्य हुआ है किन्तु इन सबके बावजूद भी यहां न्यायपालिका एकीकृत है। इसका अर्थ पूरे देश के लिए एक ही सर्वोच्च न्यायालय है। केन्द्र और राज्यों के लिए पृथक-पृथक न्यायालय नहीं है और न ही यहां विभिन्न न्यायालयों के मध्य शक्तियों का विभाजन है। भारत सरकार अधिनियम 1935 के तहत संघीय न्यायालय की स्थापना का प्रावधान किया गया है जिसके तहत भारत मे संघीय न्यायालय की स्थापना 1 अक्टूबर 1937 को की गई। इसके प्रथम मुख्य न्यायाधीश सर मौरिस ग्वेयर थे। भारत की आजादी के बाद उच्चतम न्यायालय का उद्घाटन 28 जनवरी 1950 को दिल्ली में किया गया।

न्यायपालिका का आकार

भारतीय न्यायपालिका का संगठन शंकु की आकृति का है जिसमें सबसे शिखर पर उच्चतम न्यायालय उसके नीचे उच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय के नीचे अधीनस्थ न्यायालय (जिला न्यायालय) विभिन्न जिलो में स्थापित किये गये हैं। जब वह सिविल मामलों की सुनवाई करता है तो वह जिला न्यायाधीश और जब आपराधिक मामलों की सुनवाई करता है तो सत्र न्यायाधीश कहलाता है। जिला एवं सत्र न्यायालय के नीचे मुंसिफ न्यायालय होते हैं जो हर जिले में अनेक होते हैं एवं मुंसिफ न्यायालय के नीचे न्याय पंचायतें कार्य करती हैं जो गांव में एक होती है।

स्वतंत्र न्यायपालिका की आवश्यकता

प्रत्येक समाज में एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से या व्यक्ति समूहों का आपस में अथवा व्यक्ति समूहों का सरकार के साथ निरतर कुछ कारणों से विवाद चलता रहता है। इसी विवाद को निष्पक्ष रूप से सुलझाने के लिए न्यायपालिका की स्थापना की गई है। जो इस प्रकार के विवादों की जांच कर दोषी को सजा देने का कार्य करती है और साथ ही साथ विधायिका द्वारा या संसद द्वारा बनाये गये नियमों की जांच एवं कार्यपालिका द्वारा किये गये कार्यों की जांच भी निष्पक्ष रूप से करती है।

न्यायपालिका की स्वतंत्रता

न्यायपालिका की स्वतंत्रता का अर्थ है कि सरकार के अन्य दो अंग विधायिका और कार्यपालिका, न्यायपालिका के कार्यो में हस्तक्षेप न करके उनके कार्यों में किसी भी प्रकार की बांधा न पहुंचाये ताकि वह अपना कार्य सही ढंग से करे और निष्पक्ष रूप से न्याय कर सके संघात्मक सरकार मे संघ और राज्यों के मध्य विवाद के समाधान और संविधान की सर्वोच्चता बनाये रखने का दायित्व न्यायपालिका पर ही होता है। इसके साथ-साथ उस पर मूल अधिकारो के संरक्षण का भी दायित्व

होता है इसके लिए न्यायपालिका का स्वतंत्र एवं निष्पक्ष होना अति आवश्यक है।

न्यायिक सक्रियता का मानव जीवन पर प्रभाव

न्यायिक सक्रियता का मानव जीवन पर निम्नलिखित प्रभाव पड़ा है-

1. उच्चतम न्यायालय ने जनहितकारी विवादों को मान्यता प्रदान की है। इसके अनुसार को ई भी व्यक्ति किसी ऐसे समूह अथवा वर्ग की ओर से मुकदमा लड़ सकता है जिसको उसके कानूनों अथवा संवैधानिक अधिकारों से वंचित कर दिया गया है।

2. उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 21 की नवीन व्याख्या की है तथा आम आदमी के जीवन व सुरक्षा को वास्तविक बनाने का प्रयास किया गया है।

3. उच्चतम न्यायालय ने नागरिकों की गरिमा तथा प्रतिष्ठा की सुरक्षा की ओर अधिक ध्यान केन्द्रित किया है।

4. उच्चतम न्यायालय ने पूर्णतः स्पष्ट कर दिया है कि कार्यपालिका के 'स्वविवेक' पर नियंत्रण किया जाना चाहिए।

न्यायपालिका और संसद में सम्बन्ध

न्यायपालिका और संसद संविधान निर्माण के पश्चात् अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करते आ रहे हैं। न्यायपालिका ने अधिकार के मुद्दे पर सक्रियता के साथ-साथ राजनैतिक व्यवहार से संविधान का पालन न करने वालों पर भी अंकुश लगाया है। जो विषय पहले न्यायिक पुनरावलोकन के दायरे मे नहीं थे उन्हें अब इस दायरे मे ले लिया गया है जैसे- राष्ट्रपति और राज्यपाल की शक्तियां। इसके अतिरिक्त सर्वोच्च न्यायालय ने हवाला मामले, नरसिंहराव मामले और पेटोल पंपो के अवैध आबंटन जैसे मामलों में सी.बी.आई. को निर्देश दिया कि वह भ्रष्ट राजनेताओ और नौकरशाहो के विरूद्ध जांच करे। भारतीय संविधान शक्ति के सीमित बंटवारे, अवरोध तथा संतुलन के सिद्धान्त पर आधारित है। सरकार के प्रत्येक अंग का अपना-अपना कार्यक्षेत्र है। संसद या विधायिका का कार्य कानून बनाना, कार्यपालिका का कार्य उन कानूनों का क्रियान्वयन करना तथा न्यायपालिका का कार्य विधायिका द्वारा बनाये गये कानूनों, नियमों, विनियमों एवं कार्यपालिका द्वारा किये गये कार्यों की जांच करना है, लेकिन पृथक-पृथक कार्यों के होते हुए भी विधायिका और न्यायपालिका तथा कार्यपालिका और न्यायपालिका के बीच मतभेद भारतीय राजनीति की विशेषता रही है।

संविधान लागू होने के बाद सम्पत्ति के अधिकार पर रोक लगाने की संसद की शक्ति पर विवाद खड़ा हो गया। संसद सम्पत्ति के अधिकार पर कुछ प्रतिबंध लगाना चाहती थी जिससे भूमि सुधारों को लागू किया जा सके।

न्यायालय ने निर्णय दिया कि संसद मौलिक अधिकारों को सीमित नहीं कर सकती। संसद ने तब संविधान में संशोधन करने का प्रयास किया लेकिन न्यायालय ने कहा कि संविधान के संशोधन के द्वारा भी मौलिक अधिकारो को सीमित नहीं किया जा सकता है। 1967 से 1973 के बीच यह विवाद काफी गहरा गया। भूमि सुधार कानूनो के अतिरिक्त निवारक नजरबंदी कानून, नौकरियों में आरक्षण सम्बन्धी कानून, सार्वजनिक उद्देश्य के लिए निजी सम्पत्ति के अधिग्रहण सम्बन्धी कानून और अधिगृहीत निजी सम्पत्ति के मुआवजे सम्बन्धी कानून आदि इस प्रकार विवाद के उदाहरण हैं।

1973 में सर्वोच्च न्यायालय ने एक निर्णय दिया जो संसद और न्यायपालिका के संबंधों के नियमन में बहुत ही महत्वपूर्ण हो गया। यह वाद के शवानंद भारती बनाम केरल राज्य के रूप मे प्रसिद्ध हो गया। इस मुकदमे में न्यायालय ने निर्णय दिया कि संविधान का एक मूल ढ़ांचा है और संसद सहित कोई भी उस मोल मूंल ढ़ांचे से छेड़-छाड़ नहीं कर सकता। संविधान संशोधन द्वारा भी इस मूल ढाँचे को नहीं बदला जा सकता। इसके अतिरिक्त न्यायालय ने कहा कि सम्पत्ति का अधिकार मूल ढाँचे का हिस्सा नहीं है और इसलिए उस पर समुचित प्रतिबंध लगाया जा सकता है। न्यायालय ने यह निर्णय का अधिकार भी अपने पास रखा कि कोई मुद्दा मूल ढ़ांचे का हिस्सा है या नहीं यह निर्णय न्यायपालिका द्वारा संविधान की व्याख्या करने की शक्ति का सर्वोत्तम उदाहरण है।

समीक्षा

प्रत्येक राजनीतिक समस्या का देश, काल एवं परिस्थितियों से घनिष्ठ तथा प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। अतः इस दृष्टि से पूर्व अध्ययनों से संबन्धित साहित्य की समीक्षा करना शोध की अनिवार्य आवश्यकता होती हैं। अतः व्यवस्थापिका व न्यायपालिका के सम्बन्ध में वर्तमान में जो प्रवृतियाँ (विरोध/समर्थन/औचित्य आदि) सामने आयी है जिसके कारण यह विषय विभिन्न अध्ययनकत्ताओं के लिए

पुनर्विवेचन का विषय बन गया और इस पर अनेक पुस्तकें, लेख आदि निरन्तर प्रकाशित हुए है, इनमें से कुछ का विवरण निम्न प्रकार है:- प्रो. यशपाल ने अपनी पुस्तक ''न्याय का संघर्ष न्याय का संघर्ष न्याय का संघर्ष'' न्याय का संघर्ष प्रथम विप्लव कार्यालय, लखनऊ 21, शिवाजी मार्ग, पाँचवा संस्करण में दिसम्बर 1954 में न्याय-व्यवस्था में व्याप्त विरोधाभास पर प्रकाश डाला।

सी.एफ. स्ट्रांग ने अपनी पुस्तक ''माडर्न पॉलिटिक्स कॉन्सटीट्यूशन माडर्न पॉलिटिक्स कॉन्सटीट्यूशन माडर्न पॉलिटिक्स कॉन्सटीट्यूशन'' प्रसाद एण्ड संस, बांके विलास, आगरा 1959 में निष्कर्ष प्रस्तुत किया है कि पूर्व में न्यायपालिका, व्यवस्थापिका व कार्यपालिका तीनो अंग मिले हुए थे। अतः न्याय मिलने में कठिनाई आती थी, इस कारण तीव्र न्याय के लिए उन्होंने न्यायिक विभाग की स्वतंत्रता की पहल की।

डॉ. गंगादत्त तिवारी ने अपनी पुस्तक ''भारत क ''भारत क ''भारत का राष्ट्रीय आन्दोलन एवं राष्ट्रीय आन्दोलन एवं संवैधानिक संवैधानिक विकास'' विकास'' मीनाक्षी प्रकाशक, मेरठ में वातावरण एव राजनीतिक पहलुओं को समझाने का प्रयास किया है कि जब कोई देश गुलाम होता है, तो उसके मनोबल का ह्रास होता है, परन्तु उसके परिणामस्वरूप उसे ऐसा नेतृत्व मिलता है, तो वह अपने राष्ट्र को पुनः स्वाधीन राष्ट्र की श्रेणी में लाकर खडा कर देता है।

न्यायिक समीक्षा, सक्रियता तथा राजनीतिक विकास से सम्बन्धित और अध्ययन के उद्देश्यों के लिए महत्वपूर्ण साहित्य के सर्वेक्षण से स्पष्ट है कि काफी साहित्य भारतीय शासन व्यवस्था के सर्वा गीण अध्ययन के भाग के रूप में न्यायपालिका की शक्तियों एवं न्यायिक समीक्षा के अंतर्निहित परिणामों का विवरण प्रस्तुत करता है। इन ग्रन्थों में एम.वी. पायली की पुस्तक ''कॉस्टीट्यूशनल गवर्नमेंट इन इंडिया'' (1966)1 गेनेविल ऑस्टिन की ''द इंडियन कॉस्टीट्यूशन: कोर्नरस्टो न ऑफ़ ए नेशन'' (1966),2 डी.डी. बसु के 10 भागों में प्रकाशित महत्वपूर्ण ग्रन्थ सैद्धान्तिक परिप्रेक्ष्य में ए.वी. डायसी की ''द लॉ ऑफ़ दी कॉस्टीट्यूशन (1961), 8 के.सी. व्हीयर की मॉर्डन कॉस्टीट्यूशन (1966),9 में न्यायपालिका के सामान्य विवेचन से स्पष्ट है

उद्देश्य

1. संसदीय शासन व्यवस्था के तीन स्तम्भों की संरचना, कर्तव्य एवं शक्तियों का सबधात्मक अध्ययन करना।
2. भारत में न्याय व्यवस्था का विकासात्मक अवलोकन, न्यायिक व्यवस्था का प्राचीन, मध्यकालीन से लेकर आधुनिक समय तक का विकासात्मक अध्ययन करना।
3. न्यायिक पुनरावलोकन व न्यायिक सक्रियता, पृथक या समाहित विषय का विवेचन करना।

शोध प्रणाली

शोध प्रणाली (Research Methodology) किसी भी अध्ययन की वैज्ञानिकता शोध विधि की मूल्य निरपेक्षता और वस्तुनिष्ठता पर निर्भर करती है। इसीलिए शोध में प्रयुक्त शोध प्रविधि का दोष रहित होना अनिवार्य है। यही कारण है कि प्रत्येक शोध को प्रारम्भ करने से पूर्व शोध के लिए प्रयुक्त शोध प्रविधि का चयन कर लिया जाता है। न्यायिक सक्रियता के सम्बन्ध में प्रकाशित अनेक प्राथमिक व द्वितीयक सभी प्रकार के स्त्रोतों का प्रयोग किया गया है। प्राथमिक स्त्रोतों मे न्यायिक सक्रियता से सम्बन्धित विभिन्न केसो का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत शोध मे उपलब्ध ग्रन्थों, प्रकाशित लेखो तथा अन्य विभिन्न स्त्रोतों से प्राप्त सूचनाओं को प्राथमिक स्त्रोत के रूप में प्रयुक्त की गयी। शोध प्रविधि निम्न शीर्ष को के अन्तर्गत समझाई जा सकती है। इस शोध को निष्पादित कर अन्तिम चरण व निष्कर्ष तक पहुंचाने के लिए शोध की विश्लेषणात्मक पद्धति काम में लाई जायेगी, जिसके विभिन्न चरण निम्नानुसार होगें।

सैद्धान्तिक विश्लेषण

कार्यपालिका और न्यायपालिका कापृथक्करणः- पृथक्करणः- पृथक्करणः- संविधान के अनुच्छेद 50 में यह लिखा है कि राज्य न्यायपालिका को कार्यपालिका से पृथक करने के लिए कदम उठाएगा। इस निर्देश के अनुसरण में संसद ने विधि बनाकर न्यायिक कृत्य अनन्य रूप से न्यायापालिका को सौंप दिए है। इस पृथक्करण से पहले कुछ राज्यों में कार्यपालिका के अधिकारी भारतीय दंड संहिता के अधीन मामले निपटाते थे। वे जमानत के आवेदनों की सुनवाई करते थे। दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 के अधिनियमित किए जाने के पश्चात न्यायिक प्रणाली में कार्यपालिका के अधिकारियों को कोई काम नहीं सौंपा गया है। न्यायपालिका को पूरी तौर से कार्यपालिका से अलग कर दिया गया है।

निष्कर्ष

भारत में न्यायापालिका की भूमिका और कार्य" एक वृहद तथा महत्वपूर्ण सामाजिक विषय को शोधकर्ता द्वारा चुना गया है। शोध शीर्षक के अंतर्गत जैसा कि पूर्व में बताया जा चुका है किसी एक विषय में न बाँधकर प्रायः उन सभी मुद्दों को शामिल किया गया है जिसके सन्दर्भ में महत्वपूर्ण न्यायालयी निर्णयों द्वारा न्यायपालिका की सक्रियता उजागर हुई है। चाहे वह कार्यपालिका, विधायिका या फिर कोई अन्य क्षेत्रों जैसे मूल अधिकार, राज्य के नीति निर्देशक तत्व, संसदीय सरकार, व्यस्क मताधिकर के मामलों पर न्यायपालिका द्वारा जो समय पर दिशा-निर्देश जारी किया गया उसको हमने शोध के परिप्रेक्ष्य में सामने लाने का प्रयास किया है।

उपसंहार

नागरिकता के सन्दर्भ में प्रदीप जैन वनाम भारत संघ, माइकल बनाम स्टेट आफ बाम्बे, मुहम्मद राजा बनाम स्टेट आफ बाम्बे के निर्णयों द्वारा न्यायपालिका की भूमिका स्पष्ट हुई है। इसी प्रकार पाकिस्तान को प्रवजन करने वाले लोगों की नागरिकता के सन्दर्भ में निसार बनाम भारत संघ, बिहार राज्य बनाम अमर सिंह वहीं एक महत्वपूर्ण मामलों में उच्चतम न्यायालय ने भारत में रहने वाली उस पाकिस्तानी महिला के दावे को खारित कर दिया तथा कहा कि मात्र् अधिक समय तक रहने और मतदाता सूची में नाम शामिल हो जाने से ही किसी महिला को अधिकार प्राप्त नहीं हो जाता है। वहीं संघ की न्यायपालिका से सम्बन्धित मामलों-कार्यपालिका की प्रमुखता ए.ऐी. एडवोकेट आन रिकार्ड एसोसियेशन आन रिकार्ड के निर्णय जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि न्यायाधीशों की नियुक्ति तथा स्थानांतरण के मामलों में सरकार को पूरा अधिकार है। इसी प्रकार एस.पी. गुप्ता बनाम भारत संघ2 के मामलों में न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि मुख्य न्यायाधीश द्वारा किये गये निर्णय तथा की गयर सिफारिश को माने के लिए कार्यपालिका बाध्य नहीं है। इसी प्रकार न्यायाधीस को त्यागपत्र् देने के लिए बाध्य करना न्यायपालिका की स्वतन्त्रता पर आघात से सम्बन्धित मामलों सी. रविन्द्र अय्यर3 बनाम न्यायाधीश ए.एम. भट्टाचार्य के मामलों में न्यायपलिका ने यह निर्णय दिया कि एक न्यायाधीश को उसके पद से हटाने के लिए संविधान के अनुच्छेद 217 (1)और 124 (4) और (5) के अधीन प्रक्रिया विहित किया है अतः इसके अलावा कोई प्रक्रिया अपनाई जा सकती है।

सन्दर्भ सूची

1. पायली, एम.वी.; "कॉस्टीट्यूशनल गवर्नमेन्ट इन इंडिया" एस. चन्द्र प्रकाशन, नई दिल्ली, 1966
2. ऑस्टिन, ग्रेनविल; "दी इंडियन कॉस्टीट्यूशन: कॉर्नर स्टोन ऑफ़ ए नेशन" ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1966
3. बसु, डी.डी.; "कमेंट्री ऑन द कॉस्टीट्यूशन ऑफ़ इंडिया", एन.सी. सरकार, कलकत्ता 1965
4. सीरवई, एच.एम.; "दी कॉस्टीट्यूशनल लॉ ऑफ़ इंडिया", 1975
5. कागजी, एम.सी.जे.; "दी कॉस्टीट्यूशन ऑफ़ इंडिया", 1975
6. पांडे, जे.एन.; "कॉस्टीटयूशनल लॉ ऑफ़ इंडिया", 1988
7. धवन, राजीव और एलिस जेकब; "इंडियन कॉस्टीट्यूशन: ट्रेड्स एंड इश्यूज", 1978
8. डायसी, ए.वी.; "दी लॉ ऑफ़ दी कॉस्टीट्यूशन", 1961
9. व्हीयर के.सी.; "मॉडर्न कॉस्टीट्यूशन", 1966 10. जैन, यू.सी. ओर नायर जीवन; "ज्यूडिशियरी इन इंडिया"

Corresponding Author

Renu Bala*